दीर्घकालिक वृद्धि के लिए आर्थिक सुधार*

सुबीर गोकर्ण

I. परिचय

मेरे लिए यह अत्यंत हर्ष और सौभाग्य की बात है कि मुझे आज मद्रास चैंबर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री (एमसीसीआइ) की 175वीं वार्षिक आम सभा में बोलने के लिए आमंत्रित किया गया है । चैम्बर द्वारा पहले भी अनेक बार आयोजित बैठकों में बोलने का अवसर मुझे प्राप्त हुआ है और एसोचैम की आर्थिक कार्य-समिति के अध्यक्ष के पद पर रहने की अवधि के दौरान समिति के सदस्यों और सचिवालय से परस्पर संवाद करने का भी अवसर मुझे मिला था । लेकिन यह एक विशेष अवसर है और मैं चैम्बर को धन्यवाद देता हूँ कि उन्होंने मुझे ऐसे अवसर पर बोलने के लिए आमंत्रित किया है जो अनेक वर्षों से मेरे दिलो-दिमाग पर छाया हुआ है।

एक ऐसा संगठन जो 175 वर्षों से अस्तित्व में है और फलता-फूलता रहा है, स्पष्ट रूप से दीर्घकालिकता के बारे में जानता है । इसने संभवतः परीक्षण प्रणाली के माध्यम से यह जान लिया है कि इसे अपने अलग-अलग पणधारियों के लिए प्रासंगिक और उपयोगी बने रहने के लिए क्या बदलना है और क्या ले आना है । अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा जाये तो दीर्घकालिक वृद्धि को व्यक्ति के परिप्रेक्ष्य में देखा जाना है । अंततः ये व्यक्ति या परिवार होते हैं जो निश्चय करते हैं कि वृद्धि की प्रक्रिया से वे लाभान्वित हुए हैं या नही । संक्षेप में कहा जाये तो जिस प्रकार किसी संगठन यथा, एमसीसीआइ का टिके रहना इस पर निर्भर करता है कि यह कितनी दक्षता से अपने सदस्यों के हितों को पूरा करता है, उसी प्रकार किसी वृद्धि-प्रक्रिया की दीर्घकालिकता इस पर निर्भर करती है कि कितनी दक्षता से यह अपने प्रमुख पणधारियों - व्यक्तियों और परिवारों - के हितों को अर्थव्यवस्था में पूरा करती है ।

इसी व्यापक परिप्रेक्ष्य में मैं आज के विषय पर ध्यान देना चाहता हूँ । आगे, मैं चार मुद्दों पर ध्यान दूँगा - खाद्यान्न, मानव-पूँजी, आधारभूत संरचना और वित्तीय क्षेत्र विकास : जिनमें मेरा मानना है कि वृद्धि-प्रक्रिया की दीर्घकालिकता के लिए उस तरीके से सुधार किया जाना महत्वपूर्ण है जिसे मैंने परिभाषित किया है । इसे संपूर्ण सूची नहीं माना जाना चाहिए । मैं यह भली-भाँति जानता हूँ कि अनेक अन्य मुद्दे हैं जो सुधार की प्राथमिकताओं की सूची में स्थान पाने योग्य हैं । मैंने अपनी सूची अपनी समझदारी और ज्ञान के आधार पर बनायी है और इसलिए नहीं कि वह निश्चयात्मक रूप से उन मुद्दों से अधिक महत्वपूर्ण है जिन्हें मैंने छोड़ दिया है । न ही मैं सुधार के विचारों के जरिए कोई सटीक उपाय सुझा रहा हूँ । जटिल अंतर्संबंधों को देखते हुए ऐसे अनेक समाधान जो सीमित संदर्भ में पूर्णतया उचित प्रतीत होते हैं, वे खंडित हो जाते हैं जब संदर्भ में विस्तार किया जाता है । तथापि, इन सभी चेतावनियों के बावजूद मैं निश्चयपूर्वक कहना चाहूँगा कि ये सभी सुधार की महत्वपूर्ण कार्य-सूची में शामिल हैं और उभरते समाधानों पर बहस करने तथा उन्हें परिष्कृत करने योग्य हैं ।

II. खाद्यान्न

खाद्य-मुद्रास्फीति आज की अर्थव्यवस्था का एक महत्वपूर्ण ऋणात्मक लक्षण है । इसका गहरा प्रभाव जीवन की गुणवत्ता पर होता है क्योंकि लोग अपने पौषणिक मानकों को बनाये रखने के लिए, जिसे उन्होंने पहले से तय किया हुआ है, संघर्षरत रहते हैं या कुछ अन्य वस्तुओं का उपभोग करना छोड़ देते हैं ताकि वे भर पेट भोजन पा सकें । एक ऐसे देश के लिए जिसने 1960 के दशक के अंत और 1970 के दशक के आरंभ में हरित क्रांति के रूप में खाद्यान्न की कमी से जूझने का कारगर उपाय खोजा था, आज की स्थिति यह याद दिलाती है कि कोई भी समाधान स्थायी नहीं होता ।

वर्तमान गतिविधियों के संदर्भ में यह कहा जा सकता है कि विश्व-अर्थव्यवस्था स्वयं खाद्य-कीमतों की समस्या का सामना कर रही है । जैसाकि चार्ट 1 में दर्शाया गया है, पिछले दो वर्षों से खाद्य पदार्थों की कीमतें पण्य-कीमतों में वैश्विक प्रवृत्ति का अनुसरण कर रही हैं । ऐसा विचार व्यक्त किया जाता है कि यह पण्यों का वित्तीयकरण किये जाने का नतीजा है जिसमें वर्ष 2008 के संकट के प्रत्युत्तर में वैश्विक चलनिधि में अधिक बढ़ोतरी सीधे पण्यों सहित उच्चतर आस्ति-मूल्यों में अंतरित होती है । यदि ऐसा हुआ हो तो अलग-अलग खाद्य पदार्थों की कीमतों का गति सिद्धांत भी, जिसे चार्ट 1 में दर्शाया गया है, यह बताता है कि ऐसे पण्य-विशिष्ट कारक भी होते हैं जो व्यापक प्रवृत्ति को या तो प्रबल या प्रभावहीन

* चेन्नै में मद्रास चैम्बर ऑफ कॉमर्स एंड इंडस्ट्री की 175वीं वार्षिक आमसभा में 23 जून 2911 को डॉ.सुबीर गोकर्ण, उप गवर्नर, भारतीय रिजर्व बैंक की प्रस्तुति ।भूपाल सिंह से प्राप्त सहयोग के लिए के लिए हम उनके आभारी हैं ।

चार्ट 1: वैश्विक खाद्य-मूल्य स्थिति

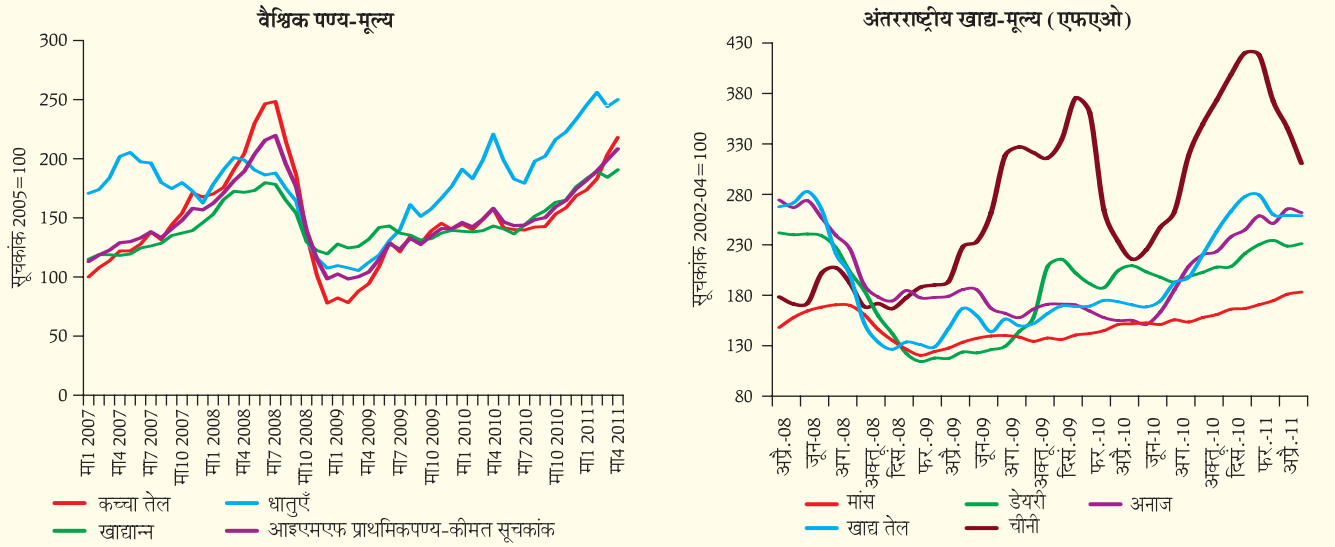

कर देते हैं । उदाहरण के लिए चीनी वर्तमान आपूर्ति-स्थिति के प्रत्युत्तर में उतार-चढ़ाव दिखाती है जबकि गेहूँ कुछ बड़े कृषि-क्षेत्र में निरंतर सूखे के प्रभाव को प्रतिबिंबित करता है ।

भारत की खाद्य मुद्रास्फीति निश्चित रूप से वैश्विक प्रवृत्ति से जुड़ी हुई है, विशेष रूप से अधिक व्यापार किये जाने वाले पण्य जैसे, चीनी, और तिलहन के संदर्भ में लेकिन अन्य अनेक पण्यों में अधिक आत्म-निर्भरता को देखते हुए इसमें घरेलू कारक बड़ी भूमिका निभाते हैं । चार्ट 2 में समग्र मुद्रास्फीति के परिदृश्य में खाद्य मुद्रास्फीति के महत्व को दिखाया गया है । जैसाकि ग्राफ से पता चलता है, यद्यपि हाल के महीनों में मुद्रास्फीति के प्रेरक तत्व ऊर्जा-कीमतें और माँग-जन्य दबाव रहे हैं जैसा कि खाद्येतर विनिर्मित उत्पाद मे प्रतिबिंबित होता है, खाद्यान्न की कीमतों ने वर्ष 2010 की पहली छमाही में मुद्रास्फीति में काफी योगदान किया और वे अप्रिय रूप से काफी ऊँची बनी हुई हैं । सूचकांक पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालने के अतिरिक्त, यह संभावना भी है कि यह उच्चतर मजदूरी की माँग के माध्यम से व्यापक मुद्रास्फीतिकारक प्रक्रिया में योगदान करेगी जिसके बारे में साक्ष्य मौजूद है।

सामान्य तौर पर यह विश्वास किया जाता है कि खाद्यान्न की कीमतें मानसून के प्रति बहुत संवेदनशील होती हैं लेकिन इस विश्वास का परीक्षण पिछले कुछ वर्षों में किया गया है । मैं सोचता हूँ कि इस बात के पर्याप्त साक्ष्य हैं कि खाद्यान्न-कीमतें अस्थायी कारकों यथा, वर्षा, से

चार्ट 2: घरेलू मुद्रास्फीति दृष्टिकोण

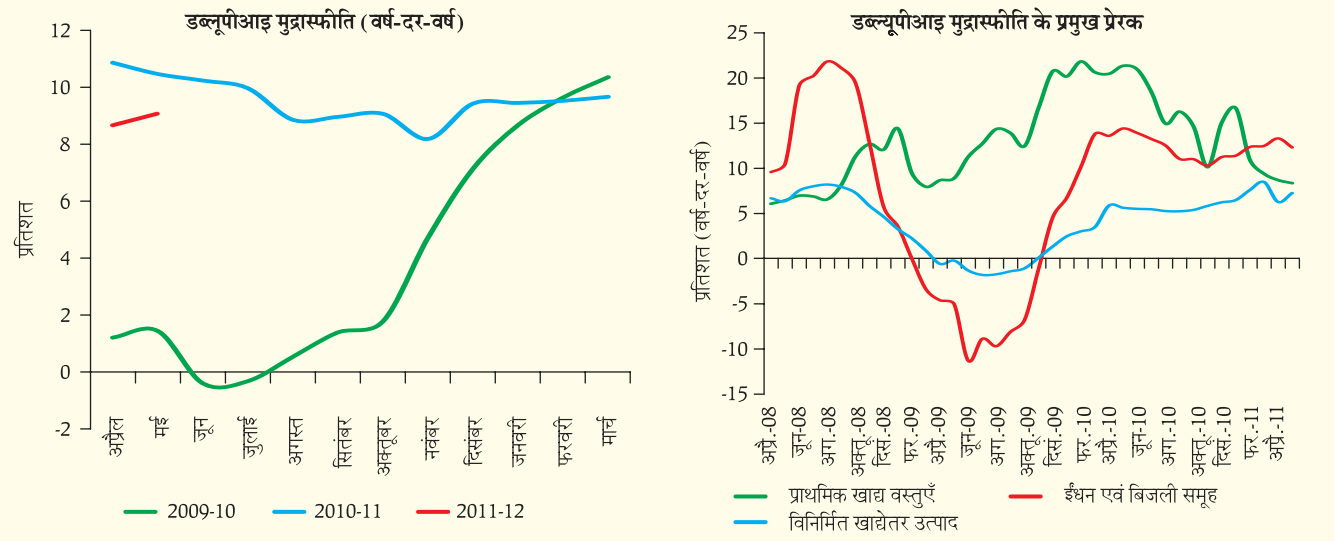

चार्ट 3: खाद्य मुद्रास्फीति : पोषण में अंतर

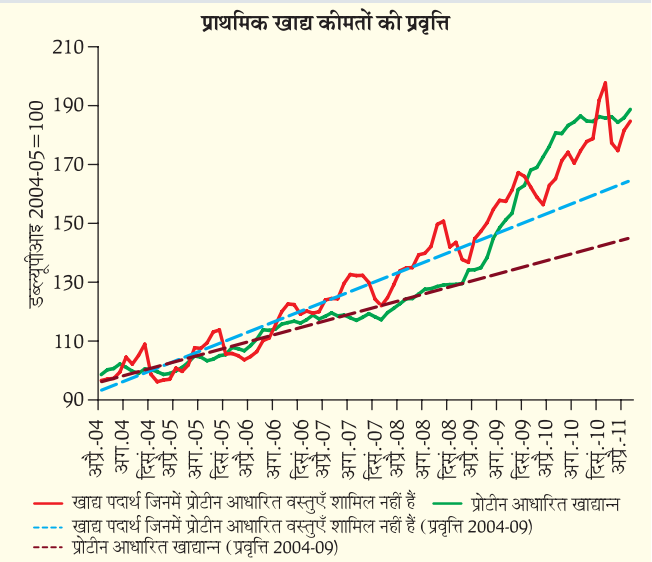

प्रेरित नहीं होती हैं बल्कि वे अधिक मौलिक ताकतों से प्रेरित होती हैं। अनिवार्य रूप से, अपेक्षाकृत द्रुत वृद्धि की एक लंबी अवधि ने अधिकांश परिवारों को उस दहलीज पर खड़ा कर दिया है जहाँ वे पोषण की विविधता की ओर देख रहे हैं। विशिष्ट पारिवारिक भोजन में अनाज की प्रमुखता से अब वे अदिक संतुलित भोजन की ओर रुख करते है और परिणामस्वरूप प्रोटीनयुक्त पदार्थों - दाल, दूध, मांस, मछली और अंडे, सब्जियाँ और फलों की माँग में बढ़ोतरी हो जाती है। इसमें आश्चर्य नहीं कि ये वस्तुएँ हाल की अवधि में खाद्य मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण रही हैं।

पुनः, जैसाकि चार्ट 3 में स्पष्ट रूप से दिखाया गया है, जहाँ तक प्रोटीनयुक्त पदार्थों का संबंध है, इसमें पूर्व की प्रवृत्ति से महत्वपूर्ण विचलन देखने को मिलता है जिसमें प्रोटीन रहित वस्तुओं के विपरीत अधिक संयमित प्रवृत्ति की ओर लौटने के कोई महत्वपूर्ण संकेत नहीं नजर आते हैं। इसका निहितार्थ यह है कि जहाँ तक वृद्धि से परिवारों की आय बढ़ती है, विशेष रूप से आय-वितरण के निम्नतर छोर तक, पोषण के विविधीकरण के परिणामस्वरूप खाद्यान्न की कीमतों पर दबाव बना रहेगा।

खाद्य पदार्थों में निरंतर रहने वाले माँग-आपूर्ति असंतुलन का स्थायी समाधान हे आपूर्ति को द्रुत गति से बढ़ाया जाना। ठीक ऐसा ही हरित क्रांति ने किया था। निविष्टियों के जिस संयोजन ने यह सफलता प्राप्त की थी वह सबको ज्ञात है और इसके कुछ सबक अभी भी हमारे लिए प्रासंगिक हैं। तथापि, बुनियादी सिद्धांत बिलकुल स्पष्ट हैं। प्रासंगिक वस्तुओं का उत्पादन मुख्यत: उनकी उत्पादकता को बढ़ा कर बढ़ाया जाना है। किसानों के लिए खेती की जोखिमों का शमन करना होगा, ताकि ये उत्पाद उनके लिए अधिक आकर्षक हो सकें। उत्पादों के परिवहन, भंडारण और वितरण की कुशलता बढ़ानी होगी ताकि हानि और वितरण मार्जिन को कम रखा जा सके। ये स्पष्ट बिन्दु दिख सकते हैं लेकिन इनसे बचा नहीं जा सकता। कुछ नीतियाँ सामान्य हो सकती हैं और कुछ फसल-विशिष्ट हो सकती हैं जो इसे व्यापक परिप्रेक्ष्य में समस्याओं तक पहुँचने योग्य बना देती हैं। सरकार द्वारा इस ओर पहला कदम उठाते हुए नैशनल मिशन ऑन प्रोटीन सप्लीमेंट का गठन किया गया है जिससे एक ठोस कार्य-योजना तेजी से उभर कर सामने आ सकती है। इसके अभाव में संभावित परिदृश्य निरंतर खाद्य मुद्रास्फीति बने रहने का होगा जिससे जीवन-यापन की गुणवत्ता महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित होगी और निरंतर पौषणिक असंतुलन बना रहेगा। दीर्घकालिक वृद्धि के लिए यह कोई नुस्खा नहीं है।

III. मानव धन

भारत दुनिया का दूसरा सबसे बड़ा आबादी वाला देश है और दो दशकों में इसकी आबादी और बढ़ जायेगी। यह सबसे तरुण भी है और आनेवाले कुछ दशकों तक ऐसा ही बना रहेगा। एक स्तर पर 'जनसांख्यिकीय लाभ' काफी अवसर प्रदान करता है। चार्ट 4 में भारत और चीन में अगले दो दशकों में जनसांख्यिकीय परिवर्तन को तुलनात्मक रूप में दिखाया गया है। पिछले तीन दशकों से चीनियों की वृद्धि-कथा का विवरण तैयार किया गया है और यहाँ मैं इस पर कुछ नहीं कहना चाहूँगा सिवाय इस बात का उल्लेख करने के कि उनकी निरंतर वृद्धि में महत्वपूर्ण निविष्टि श्रमिकों की प्रचुरता का होना था। निस्संदेह, इसमें उनकी अन्य नीतियों का भी योगदान था लेकिन उन सबको इस संदर्भ में देखना होगा कि उन्होंने किस प्रकार कामगारों की बड़ी संख्या को खेतों से कारखानों की ओर ले जाना सुविधाजनक बनाया।

चार्ट 4: जनसांख्यिकीय परिवर्तन

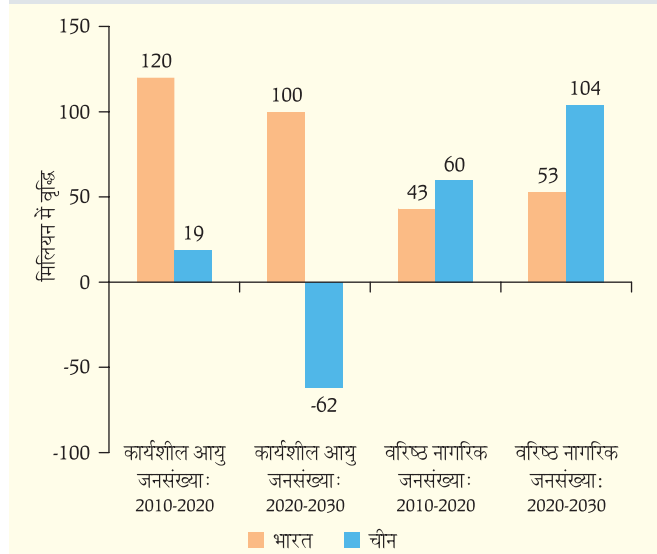

चार्ट 4 का मुख्य बिन्दु यह है कि चीनी कामगार समूह अगले दो दशकों में छोटा होता जायेगा क्योंकि समूह के कामगारों की आयु इस अवधि में बढ़ेगी और इस अवधि में भारत में बड़ी संख्या में कामगार उपलब्ध होंगे । जबकि चीन में वर्ष 2010 और 2030 के बीच लगभग 40 मिलियन कामगार कम होंगे क्योंकि उनकी आयु 60 वर्ष से अधिक हो जायेगी, भारत में वस्तुतः 220 मिलियन कामगार उपलब्ध होंगे । प्रतिस्पर्धात्मक फायदे के संदर्भ में यह 'कारखाने से दुनिया तक' के अवसर का है जिसमें लाखों लोग, विशेष रूप से अपेक्षाकृत न्यून लागत वाले कामगार ऐसा माल तैयार करेंगे जिसकी खपत दुनिया भर में होगी। वस्तुतः चार्ट 5 सापष्ट रूप से यह दर्शाता है कि जैसे-जैसे चीन के कामगारों की आयु बढ़ेगी, भारत कामगारों के वैश्विक समूह पर हावी होगा, क्योंकि किसी भी देश में भारत के समान स्तर की श्रमिक-लागत उपलब्ध होने की संभावना नहीं है और न ही उनकी जनसंख्या भारत की जनसंख्या के निकट है । यदि वैश्विक विनिर्माण का केंद्र चीन से हटता है तो यह भारत की ओर मुड़ सकता है या इसका भौगोलिक क्षेत्र-विस्तार कुछ-कुछ दक्षिण एशिया की तरफ हो सकता है।

तथापि केवल यह तथ्य कि अर्थव्यवस्था के पास संभावित कामगारों की एक बड़ी संख्या उपलब्ध है, इस बात की गारंटी नहीं हो सकता है कि उन्हें वांछनीय, अपेक्षाकृत उच्च उत्पादक, अच्छी मजदूरी वाल काम मिलेगा । इस प्रक्रिया में स्वयमेव कुछ नहीं होता और यही कारण है कि अन्य नीतियाँ अत्यंत महत्वपूर्ण होती हैं जो इसे सुकर बनाती हैं और इसमें सहायता करती हैं । यही वह बिन्दु है जहाँ इस प्रक्रिया को दुहराने की भारत की योग्यता पर सवाल खड़े होते हैं ।

एक बुनियादी चिंता श्रम-बल की गुणवत्ता के बारे में है । सारणी 1 में सर्वाधिक बुनियादी श्रम-बल गुणवत्ता पैरामीटर अर्थात क्या

चार्ट 5 :आबादी में कार्यशील आयु वाले लोगों की संख्या

(विश्व-आबादी में 15-59 वर्ष की आयु के लोगों का हिस्सा)

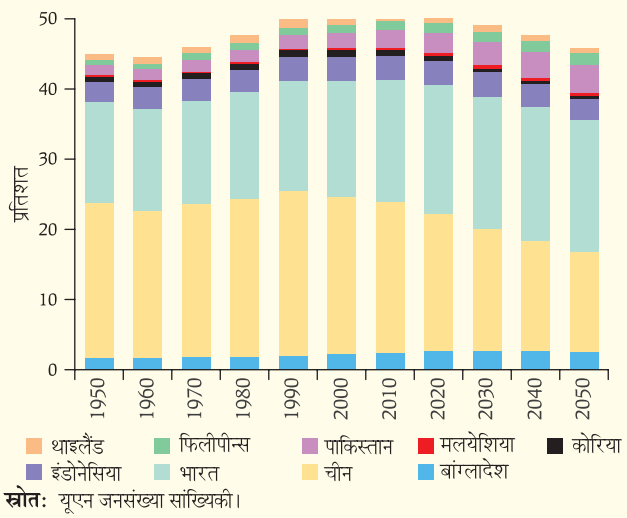

स्रोत: यूएन जनसंख्या सांख्यिकी।

सारणी 1: कौशल-स्तर

विद्यालय में नामांकन (कुल %)

	1975	1980	1990	2001	2007
बांग्लादेश	19	17	18	45	44
चीन	–	51	38	63	74
भारत	26	29	41	46	57
इंडोनेशिया	21	–	48	58	76
कोरिया गणराज्य	54	77	93	94	97
मलेशिया	46	48	56	65	68
पाकिस्तान	18	17	20	–	32
फिलीपीन्स	54	65	71	75	81
थाइलैंड	23	27	29	63	75

स्रोत: विश्व बैंक

कामगारों ने माध्यमिक विद्यालय की शिक्षा प्राप्त की है, का तुलनात्मक चित्र प्रस्तुत किया गया है । स्पष्ट रूप से भारत के रिकार्ड में महत्वपूर्ण सुधार होने के बावजूद यह चीन और दक्षिण-पूर्व एशियाई अर्थव्यवस्थाओं से जो सभी बिजली घरों का निर्माण करते रहे हैं और अभी भी कर रहे हैं, बहुत पीछे है । निस्संदेह, केवल यह तथ्य कि कामगार ने विद्यालय की पढ़ाई की है, इस बात की गारंटी नहीं होता है कि उसे उत्पादकता की दृष्टि से नियोजित किया जा सकता है । कामगारों को कार्य करने के लिए व्यावसायिक, कार्योन्मुख प्रशिक्षणयुक्त किया जाना आवश्यक हो सकता है । इन संकेतकों के संबंध में आँकड़े स्थूल हैं लेकिन जनश्रुतिमूलक साक्ष्य बताते हैं कि यह बहुत बड़ा प्रवाह तंत्र नही है और अपनी वर्तमान अवस्था में, इसके बड़ी संख्या में संभावित कामगारों को मुश्किल से आज अपनी ओर लाने में सफल हो पाने की आशा है भले ही अगले दो दशकों में इनकी संख्या में वृद्धि प्रत्याशित हो ।

इसके परिणामस्वरूप अंशतः लेकिन कुछ अन्य कारकों के चलते भी जिनमें से कुछ पर अगले खंड में ध्यान दिया जायेगा, लोगों को खेती से कारखाने की ओर ले जाने में भारत का रिकार्ड बहुत अच्छा नहीं रहा है । जैसाकि चार्ट 6 में दर्शाया गया है, वर्ष 1993-94 से आर्थिक कार्यकलाप की संरचना में महत्वपूर्ण बदलाव आया है । जबकि कृषि का हिस्सा कम हुआ है, सेवा-क्षेत्र का हिस्सा बढ़ा है और उद्योग का वस्तुतः वैसा ही बना रहा है । कृषि के हिस्से में कमी एक सार्वजनिक ऐतिहासिक पैटर्न है लेकिन प्रमुख रूप से सेवा-क्षेत्र की ओर हिस्से में परिवर्तन भारत के लिए अनूठा है । लेकिन यह एक अलग मुद्दा है । चार्ट 6 में जो बात आश्चर्यजनक है वह यह है कि श्रम-बल को बहुत कम महत्वपूर्ण माना गया है । श्रम-बल का 55 प्रतिशत कृषि-क्षेत्र में बना रहा जबकि इस क्षेत्र के हिस्से में कमी को समान रूप से उद्योग और सेवाओं के क्षेत्र में अवशोषित किया गया । वर्ष 1993-94 में जीडीपी के 30 प्रतिशत के साथ कृषि क्षेत्र 65 प्रतिशत श्रम-बल को रोजगार प्रदान कर रहा था । वर्ष 2007-08 तक यह क्षेत्र जीडीपी के 17

चार्ट 6: धीमा रोजगार परिवर्तन

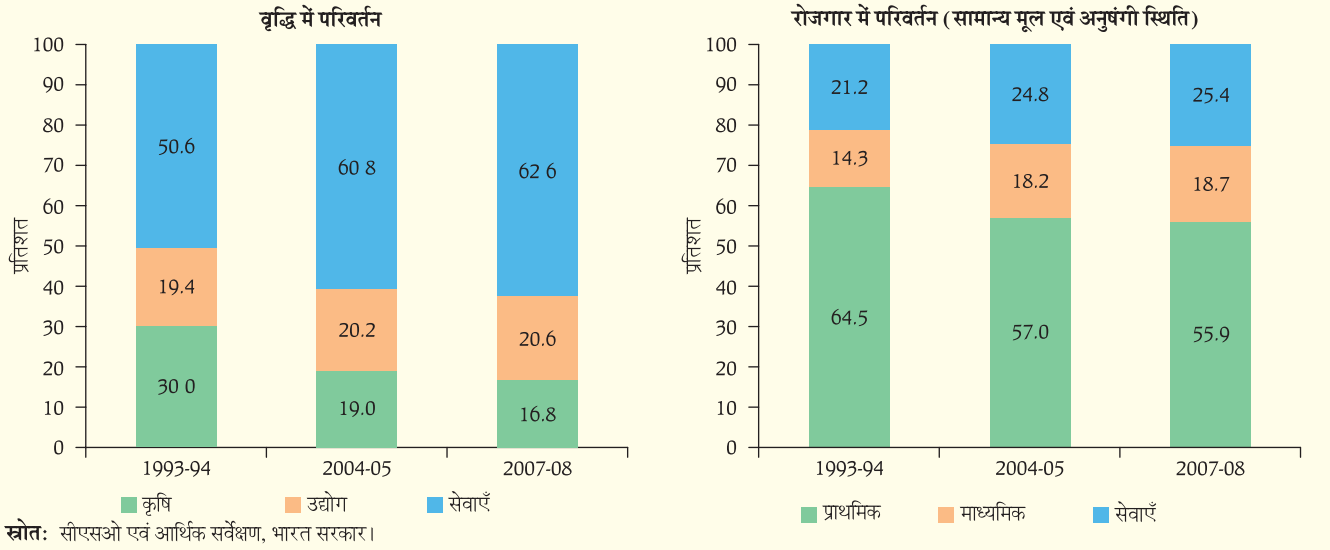

स्रोत: सीएसओ एवं आर्थिक सर्वेक्षण, भारत सरकार।

प्रतिशत के लिए जिम्मेवार था लेकिन यह 55 प्रतिशत श्रम-बल की सहायता करता था । संक्षेप में कहा जाये तो श्रम-बल की पुनर्संरचना उतनी द्रुत गति से नहीं हुई जितनी कि अर्थव्यवस्था की हुई जो कृषेतर क्षेत्रों द्वारा कामगारों को अवशोषित करने की असमर्थता को इंगित करता है ।

इसने आजीविका और अर्थव्यवस्था में समानता को कितना प्रभावित किया ? एक सरल गणना से कुछ संकेत मिलता है । चार्ट 7 में इन तीनों क्षेत्रों कृषि, उद्योग और सेवा में औसत श्रमिक उत्पादकता के निरपेक्ष और आपेक्षिक स्तरों को दर्शाया गया है । यद्यपि ये उत्पादकता-अंतर के बहुत अपरिष्कृत माप हैं, इनका परिणाम अर्थगर्भित है । ग्राफ में दर्शाया गया है कि उद्योग या सेवा-क्षेत्र का औसत कामगार कृषि-क्षेत्र के औसत कामगार से लगभग 5 गुणा अधिक उत्पादक होता है जिसका अर्थ यह हुआ कि उनकी आय का अनुपात उसी परिणाम में होगा । दूसरे शब्दों में, इस सरल गणित के अनुसार कृषि-क्षेत्र से उद्योग या सेवा-क्षेत्र में जाने वाला प्रत्येक कामगार उच्चतर आय में से अधिक व्यय और बचत कर पाने के अतिरिक्त जीडीपी के चार और यूनिट का योगदान करेगा ।

भले ही यह गणित अपरिष्कृत हो किंतु बात स्पष्ट है । वृद्धि को इस प्रकार गति देना जिससे वह दीर्घकालिक बने, अनिवार्य रूप से कृषि से उद्योग और सेवा-क्षेत्र में जाने वाले कामगारों को संबद्ध करेगा ।

चार्ट 7: उत्पादकता विभेदक

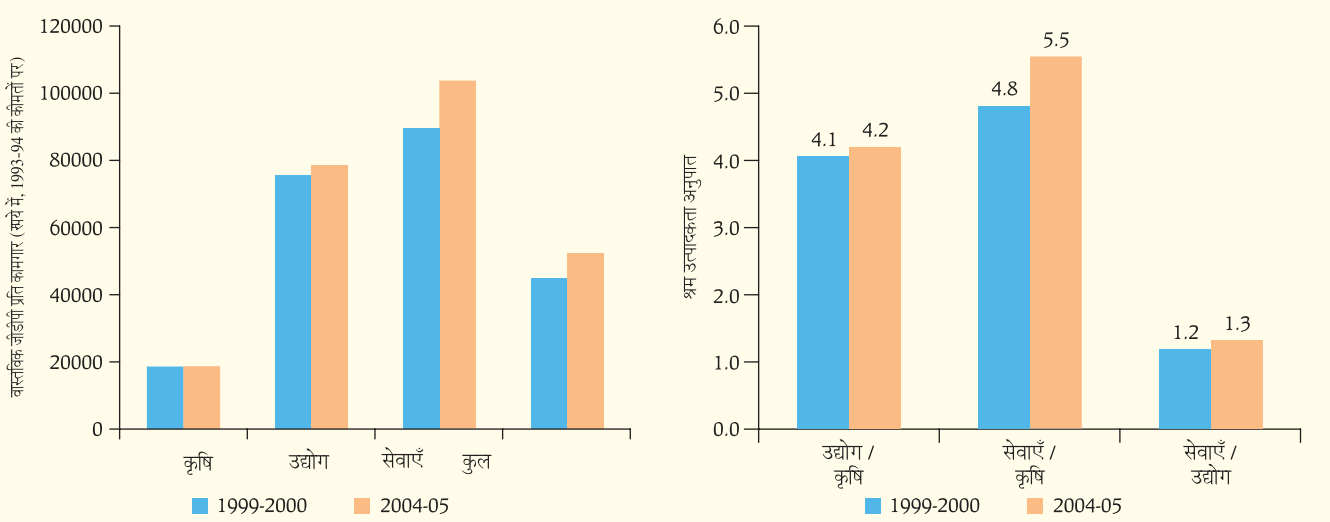

तथापि, परिवर्तन की पिछली गति अधिक आश्वस्त नहीं करती है कि भारतीय अर्थव्यवस्था इसे भली-भाँति कर पायेगी । अतः परिवर्तन को सुविधाजनक बनाना दीर्घकालिक वृद्धि के लिए महत्वपूर्ण अपेक्षा होती है । मेरे विचार से ऐसा होने के लिए तीन बातें परम आवश्यक हैं।

एक, यह मानने का साक्ष्य मौजूद है कि विनिर्माण क्षेत्र में नौकरी की सुरक्षा से संबंधित विनियम भाड़े पर कामगार लेने से नियोक्ताओं को विरत करते हैं । स्पष्ट रूप से इस बारे में अन्य तरीके हैं लेकिन चूँकि ये विनियम अस्तित्व में हैं अतः उनका निवारक प्रभाव महसूस किया जाता है । दो, यदि नौकरी की सुरक्षा को समाप्त कर दिया जाये तो कामगारों के पास बेरोजगारी बीमा का एक सुरक्षा-जाल अवश्य होना चाहिए । हर दृष्टि से, महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोजगार गारंटी योजना (एमजीएनआरइजीएस) ग्रामीण कामगारों को एक मूर्त सुरक्षा-कवच प्रदान कर रही है । अब यह सोचने का समय आ गया है कि नौकरी की सुरक्षा से संबंधित विनियमों को घटाने के सहवर्ती के रूप में औद्योगिक कामगारों को किफायती तरीके से सुरक्षा-कवच तक पहुच प्रदान की जाये । तीन, बड़ी संख्या में कामगारों को प्रशिक्षित और योग्य किया जाना है ताकि वे आधुनिक औद्योगिक वातावरण में काम कर सकें । क्या ऐसा परंपरागत स्कूली शिक्षा दे कर या वैकल्पिक पद्धति से किया जाना है, यह बहस का विषय हो सकता है लेकिन प्राथमिक उद्देश्य यह होना चाहिए कि सामान्य ज्ञान से कार्योन्मुख कौशल की ओर जाया जाये । इसमें शामिल कामगारों की संख्या इंगित करती है कि यह पूरा अभ्यास एक बड़ी सांगठनिक एवं वित्तीय चुनौती के रूप में होगा लेकिन इसका सामना किया जाना चाहिए ।

IV. आधारभूत संरचना

मेरे विचार से सुधारों के लिए तीसरा महत्वपूर्ण क्षेत्र है आधारभूत संरचना का क्षेत्र । अधिकांश आधारभूत संरचना के क्षेत्र में मौजूद समस्याएँ सर्वज्ञात हैं और संक्षेप में उन्हें दो वाक्यों में बताया जा सकता है । द्रुत वृद्धि ने बुनियादी सेवाओं की माँग उसकी उपलब्ध क्षमता से अधिक बढ़ा दी है । इस बीच, नीति, विनियामक और वित्तीय कारकों को मिलाये जाने से आधारभूत संरचना क्षेत्र में निवेश की गति धीमी हो गयी है जिसके चलते अंतराल बना हुआ है ।

हम इस कमी की बुनियादी स्थिति को दो परिप्रेक्ष्यों में देख सकते हैं । सारणी 2 और 3 ऐसे अंतरालों का कुछ संकेत देते हैं जो इस समय विद्यमान हैं । सारणी 2 देश भर में बिजली की घोर कमी के सामान्य बोध को प्रबल करती है । उत्तरी और पश्चिमी क्षेत्र उनकी वृद्धि की गति के संबंध में आपेक्षिक रूप से गतिशील है और उनके लिए जिस परिमाण में बिजली की कमी का अनुमान लगाया गया है, वह उनकी वृद्धि में

सारणी 2: आधारभूत संरचना - बड़ी कमियां

	बिजली की कमी (2009-10)			व्यस्ततम समय में बिजली की कमी (2009-10)		
	उप-लब्धता (बीयू)	कमी (बीयू)	कमी (%)	व्यस्ततम समय में उपलब्धता (एमडब्लू)	व्यस्ततम समय में कमी (एमडब्लू)	व्यस्ततम समय में कमी (%)
अखिल भारतीय	747	84	10.1	104	15	12.7
उत्तरी क्षेत्र	225	30	11.6	31	6	15.4
पश्चिमी क्षेत्र	223	35	13.7	33	7	17.7

स्रोत: केंद्रीय विद्युत प्राधिकरण

हाईवे का प्रकार	कुल में %
सिंगल लेन / इंटरमीडिएट लेन	27
टु-लेन स्टैंडर्ड	54
फोर-लेन स्टैंडर्ड या अधिक	19

महत्वपूर्ण अवरोध साबित हो सकता है । निस्संदेह, चूँकि यह कमी कुछ समय से बनी हुई है, अधिकांश प्रतिष्ठान अपने बिजली घरों के रूप में वैकल्पिक उपाय खोज रहे हैं । तथापि, यह अपेक्षाकृत महँगा है क्योंकि इससे डीजल पर निर्भरता बढ़ेगी जो पेट्रोलियम पदार्थों की माँग में बढ़ोतरी करेगा जिसका प्रभाव राजकोष और भुगतान संतुलन पर पड़ेगा । सारणी में यह भी बताया गया है कि देश को फोर-लेन हाईवे प्रणाली देने के लिए कितनी दूरी को शामिल करना है क्योंकि इसके अभाव में राष्ट्रीय परिवहन प्रणाली की भारी अक्षमता सामने आती है ।

बिजली की अपर्याप्त आपूर्ति और परिवहन की अपर्याप्त आधारभूत संरचना विनिर्माण कार्यकलाप को महत्वपूर्ण रूप से प्रभावित करती है । यह क्षेत्र सामान्यतः आधारभूत संरचना-प्रधान होता है और अविश्वसनीय या निजी तौर पर दी गयी आधारभूत सेवा की लागत में

सारणी 3: आधारभूत संरचना - बड़ी कमियां

जल का स्रोत, शहरी (स्रोत तक पहुँच के साथ शहरी आबादी का %)

देश का नाम	1990	2000	2008
ब्राजील	96	97	99
चीन	97	98	98
यूनाइटेड किंगडम	100	100	100
भारत	**90**	**93**	**96**
उत्तरी अमेरिका	100	100	100
ओइसीडी सदस्य	99	99	100
विश्व	95	95	96

स्वच्छता-सुविधा, शहरी (सुविधा तक पहुँच के साथ शहरी आबादी का %)

देश का नाम	1990	2000	2008
ब्राजील	81	84	87
चीन	48	55	58
यूनाइटेड किंगडम	100	100	100
भारत	**49**	**52**	**54**
उत्तरी अमेरिका	100	100	100
ओइसीडी सदस्य	98	98	99
विश्व	77	77	76

स्रोत: डब्लूडीआइ, विश्व बैंक

किसी प्रकार की वृद्धि होने से उत्पादकों की प्रतिस्पर्धात्मकता कम होती है । चूँकि वस्तुतः सभी विनिर्मित माल व्यापारयोग्य होते हैं अतः अक्षम घरेलू लागत-संरचना उत्पादकों को न केवल विश्व-बाजार में बल्कि घरेलू बाजारों में भी, जहाँ उन्हें आयात से प्रतिस्पर्धा करनी होती है, अलाभकर स्थिति में डाल देते हैं । यह एक महत्वपूर्ण कारण है यह इंगित करने का कि क्यों जीडीपी में औद्योगिक क्षेत्र का हिस्सा लंबे समय से वस्तुतः एकसमान बना रहा है । तुलनात्मक दृष्टि से इसके विपरीत स्थिति अन्य सभी अर्थव्यवस्थाओं, विशेष रूप से पूर्वी एशिया में दिखाई देती है जहाँ औद्योगिक क्षेत्र ने वृद्धि के इंजन के रूप में काम किया है जिसके परिणामस्वरूप लंबे समय से तुलनात्मक रूप से जीडीपी में उनके हिस्से में काफी बढ़ोतरी दिखाई पड़ी है ।

सारणी 3 में उन पैरामीटरों पर ध्यान दिया गया है जो जीवन की गुणवत्ता, जल की उपलब्धता और स्वच्छता को सीधे प्रभावित करते हैं । ये आँकड़े बताते हैं कि जल की उपलब्धता अपेक्षाकृत काफी अच्छी है लेकिन स्वच्छता की बात अलग है । यह सुकून की बात नहीं है कि इस एक पैरामीटर की दृष्टि से भारत और चीन एक दूसरे के काफी निकट हैं । भारत की 45 प्रतिशत से अधिक आबादी के पास स्वच्छता संबंधी सुविधाएँ उपलब्ध नहीं हैं, और यह एक ऐसा अंतराल है जो संभवतः उच्चतर आय के कारण जीवन की गुणवत्ता में आये सुधार को और वस्तुओं एवं सेवाओं की बेहतर उपलब्धता को व्यर्थ बना देता है।

यह हमें शहरी आधारभूत संरचना के बारे में एक बड़ी बात की ओर ले जाता है । जैसे-जैसे हम देश की जनसंख्या के प्रक्षेप-पथ पर, कुल जनसंख्या के अतिरिक्त, ध्यान देते हैं, हमें ग्रामीण क्षेत्रों से शहरी क्षेत्रों की ओर महत्वपूर्ण स्थलांतरण दिखाई देता है । चार्ट 8 में अगले कुछ दशकों में दुनिया की शहरी आबादी में भारत और चीन के योगदान के बारे में पूर्वानुमान लगाया गया है । स्पष्ट रूप से, भारतीय नगर बड़ी संख्या में युवा कामगारों के आश्रय बन जायेंगे जिन्हें देश इस अवधि में अपने श्रम-बल में जोड़ेगा । एक ऐसी स्थिति में जब नगरों में तेजी से बढ़ती जनसंख्या के कारण सभी शहरी प्रणालियाँ पहले से ही अधिक दबाव में हों, बिना अतिरिक्त संसाधन के और उनकी सांगठनिक एवं प्रबंधकीय क्षमताओं के बिना स्थिति का मुकाबला करने की उनकी योग्यता संदिग्ध दिखाई दैती है ।

संक्षेप में, आधारभूत संरचना के दो आयाम हैं - क्षेत्रीय और भौगोलिक । प्रत्येक समस्या पर सुस्पष्ट ध्यान दिये जाने की आवश्यकता है ताकि उसका सार्थक समाधान निकल सके । जहाँ तक क्षेत्रीय असंतुलन का संबंध है, सौभाग्य से ऐसे क्षेत्र हैं, जिनमें महत्वपूर्ण प्रगति की गयी है। कालक्रम से नीति की स्पष्टता का लक्ष्य प्राप्त किया गया है और युक्तियुक्त विनियामक ढांचा बनाया गया है या बनाया जा रहा है ।

चार्ट 8: शहरीकरण और आधारभूत संरचना की माँग

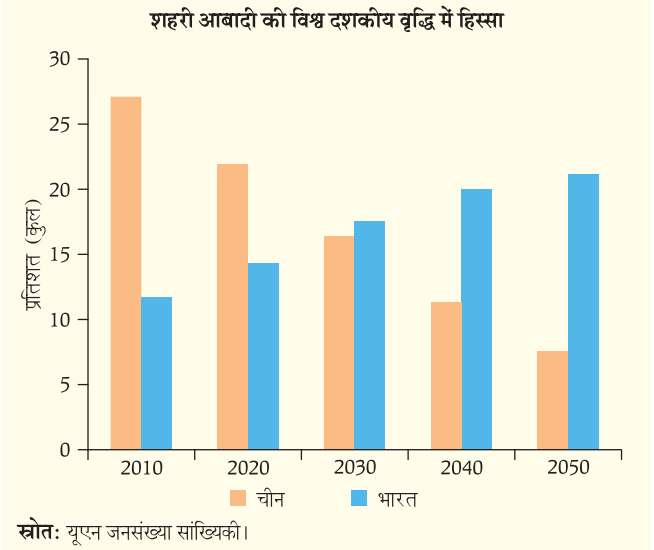

स्रोत: यूएन जनसंख्या सांख्यिकी।

इसने बदले में ऐसी जगह बनायी है जिसमें महत्वपूर्ण निजी निवेश का प्रवाह सार्वजनिक क्षेत्र के साथ भागीदारी करते हुए विशेष रूप से हुआ है, हालाँकि हमेशा ऐसा नहीं हुआ । वस्तुतः, पिछले दो वर्षों या उससे भी अधिक समय से आधारभूत संरचना क्षेत्र बैंक ऋण में वृद्धि में सबसे बड़ा योगदान करने वाला रहा है । इससे कुछ समस्याएँ खड़ी हुई हैं, जिन पर मैं अगले खंड में ध्यान दूँगा, लेकिन यह आश्वस्त होने का संकेत है कि नयी बुनियादी क्षमता का सृजन किया जा रहा है ।

जैसे-जैसे मांग-आपूर्ति का अंतराल अनेक क्षेत्रों में समाप्त होता है, वैसे-वैसे औद्योगिक निवेश पर पड़ने वाला दबाव कम होगा । ऐसी स्थिति बनानी होगी कि नयी औद्योगिक क्षमता का सृजन किया जाये जिसमें अनिश्चित या ऊँची लागत वाली बुनियादी सेवाओं का बोझ नहीं हो । यह बदले में कामगारों को अपेक्षाकृत न्यून उत्पादकता वाले कृषि-क्षेत्र से उच्च उत्पादकता वाले विनिर्माण क्षेत्र की ओर ले जायेगा बशर्ते मानव पूँजी पर चर्चा के समय बताया गया नीतिगत ढाँचा खड़ा किया जाये ।

तथापि, शहरीकरण का परिदृश्य चिंता बढ़ाता है । यदि निरंतर वृद्धि का अंतिम लक्ष्य यथासंभव अधिक से अधिक लोगों के जीवन-स्तर की गुणवत्ता में स्थायी सुधार लाना है तो यह तब तक प्राप्त नहीं किया जा सकता जब तक कि शहरी प्रणाली नये आने वाले लोगों के साथ कदम मिला कर नहीं चलती । सौभाग्य से, कुछ ऐसे उपक्रमण किये गये हैं जो कम से कम अपेक्षित सुधार की संभावना बढ़ाते हैं । ये ऊपर से नीचे तक नियंत्रित किये जाने वाले और निम्नतम स्तर से उच्च स्तर की ओर प्रगति करने वाले, दोनों ही प्रकार के दृष्टिकोण होते हैं । जवाहरलाल नेहरू नैशनल अरबन रिन्युअल मिशन

(जेएनएनयुआरएम) पहले दृष्टिकोण का प्रमुख उदाहरण है जिसमें केंद्र सरकार नगर-प्रशासन को सुव्यक्त जवाबदेही और उनके द्वारा संसाधन-प्रतिबद्धता के अधीन शहरी निवेश के लिए संसाधन प्रदान करती है ।

निम्नतम स्तर से ऊपर की ओर प्रगति करने वाली कोटि में अनेक नगरों ने अपने भूमि संबंधी अभिलेखों को डिजिटल रूप में संकलित करने के कार्य किये हैं जो तत्काल संपत्ति-करों की उनकी वसूली-क्षमता को बढ़ाती हैं जो हमेशा से नगरों के लिए राजस्व का महत्वपूर्ण स्रोत रहा है । कर लगाये जाने के फॉर्मूले और क्रियाविधि को सरल बनाया जाना नागरिक शासन में सुधार किये जाने का अन्य पहलू होता है । नागरिक सेवाओं के लिए उपयोगकर्ता-प्रभार को युक्तिसंगत बनाया जाना, प्राइवेट एजेंटों द्वारा कुछ सेवाएँ प्रदान किये जाने की व्यवस्था करना यथा, कचरे का निपटान आदि ऐसे तरीके हैं जिनका प्रयोग कर नागरिक शासन अपने वर्तमान निवासियों को और नये आने वाले लोगों को भी सेवाएँ प्रदान करने की व्यवस्था में सुधार कर रहा है ।

ये सभी कार्यक्रम जितने भी आश्वस्त और आशान्वित करने वाले हों, वे चुनौती की विशालता का सामना नहीं करते दिखाई देते हैं । अतः, शहरी शासन-ढाँचे की एक महत्वपूर्ण पुनर्संरचना, जो चुनौती का सामना करने की क्षमता का सृजन करने में सहायक हो, इस क्षेत्र में सुधार किये जाने के लिए प्राथमिकता होगी । दूसरे देशों के अनुभव से बहुत कुछ सीखा जा सकता है जहा शहरी वातावरण भारत से उल्लेखनीय रूप से अच्छा है । इसके लिए कुछ व्यापक दिशा-निर्देश शामिल किये जा सकते हैं, उदाहरणार्थ कर लगाने का अधिक अधिकार दिया जाना जिसका परिणाम यह होगा कि सरकार के ऊपरी स्तर पर निर्भरता कम होगी और शहरी प्रबंधन विशेषज्ञों का एक व्यावसायिक संवर्ग बनाना जो अपना संपूर्ण जीवन-वृत्त नगर की व्यवस्था को गतिशील रखने में बितायें और वरिष्ठता के उस स्तर तक उन्नति कर सकें जो अन्य सरकारी पदानुक्रम से तुलनीय हो । निस्संदेह, नगरों का अस्तित्व एक सामाजिक-सांस्कृतिक संदर्भ में होता है, अतः, कोई भी मॉडल पूर्णतः सटीक नहीं होता लेकिन इसका यह मतलब नहीं है कि कुछ व्यापक रूप से प्रयोज्य सिद्धांतों का अस्तित्व नहीं होता ।

विशेष रूप से भारतीय संदर्भ में कुछ अन्य प्रकार के सुझाव दिये जाते रहे हैं, उदाहरणार्थ, बड़े नगरों को संघ राज्य क्षेत्र बना दिया जाये ताकि उन्हें राज्य स्तर पर राजनीतिक अर्थव्यवस्था की ताकतों से कुछ स्वायत्तता मिले जिससे ग्रामीण क्षेत्रों को भी सरल निर्वाचकीय गणित के चलते मदद मिलेगी । ऐसे विचार परीक्षण-योग्य हैं । लेकिन निश्चित रूप से नगरों को संसाधन जुटाने की अधिक स्वायत्तता के साथ-साथ वृहत्तर प्रबंधकीय सक्षमता प्रदान किये जाने के किसी उपाय का अनुसरण किया जाना आवश्यक है भले ही यह मौजूदा संघीय ढाँचे के भीतर किया जाना हो ।

V. वित्तीय क्षेत्र

पिछले 20 वर्षों की ओर मुड़ कर देखने पर यह पता चलता है कि वित्तीय क्षेत्र में बहुत बड़ा परिवर्तन हुआ है जिसने वित्तीय मध्यस्थता के स्वरूप को, उत्पादों और सेवाओं की शृंखला को तथा प्रतिस्पर्धा की तीव्रता को पूर्ण रूप से परिवर्तित कर दिया है । यह सब अर्थव्यवस्था के समग्र विकास और संरचनात्मक परिवर्तन के अनुरूप हुआ है । वित्तीय क्षेत्र में व्यक्तियों और संगठनों की बढ़ती संख्या की जरूरतों को पूरा करने की गुंजाइश रही है । तथापि, यह प्रक्रिया पूर्ण नहीं कही जा सकती । यह सोचना उपयोगी होगा कि वित्तीय क्षेत्र सुधार शाश्वत रूप से एक चालू कार्य होता है जिसमें नीति और विनियमों को सेवाप्रदाताओं के लिए गुंजाइश बनानी होती है ताकि वे ग्राहकों की बढ़ती और नयी जरूरतों को पूरा करें, जबकि यह सुनिश्चित किया जाये कि विद्यमान और आने वाली जोखिमों पर निगरानी रखी जाये और उनका शमन किया जाये ।

यह विषय अपने आप में पूरे भाषण का आधार हो सकता है लेकिन यहाँ मैं ऐसा नहीं करना चाहता। मैं स्वयं को मुद्दों के दो सेटों तक सीमित रखूँगा - वित्तीय समावेशन और कारपोरेट बांड बाजार का विकास ।

वित्तीय सेवाओं की पहुँच को उन लोगों तक विस्तारित करना जिनकी पहुँच इस समय वित्तीय सेवाओं तक नहीं है, एक ऐसा उद्देश्य है जो धारणीय वृद्धि की जन-केंद्रित परिभाषा से संगति रखता है । इसके लिए जो साक्ष्य उपलब्ध हैं उनके अनुसार इस उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए लंबा रास्ता तय किया जाना है । सारणी 4 में विभिन्न वित्तीय उत्पादों और सेवाओं तक पहुँच के वर्तमान स्तर का चित्र प्रस्तुत किया गया है । बैक-खातों का फैलाव अपेक्षाकृत व्यापक है लेकिन उनमें भी

सारणी 4: औपचारिक वित्त तक पहुँच

- देश में निवास-स्थान की दृष्टि से वाणिज्य बैंकों की संख्या : 30000 (600,000 में से)
- जनसंख्या जिनके पास निम्न बातें हैं

बैंक खाता (बचत) रखने वाली आबादी	57%
जीवन बीमा	10%
गैर जीवन बीमा	0.6%
डेबिट कार्ड	13%
क्रेडिट कार्ड	2%

स्रोत: भारतीय रिज़र्व बैंक

चार्ट 9: परिवारों द्वारा नकदी-बचत का विवरण

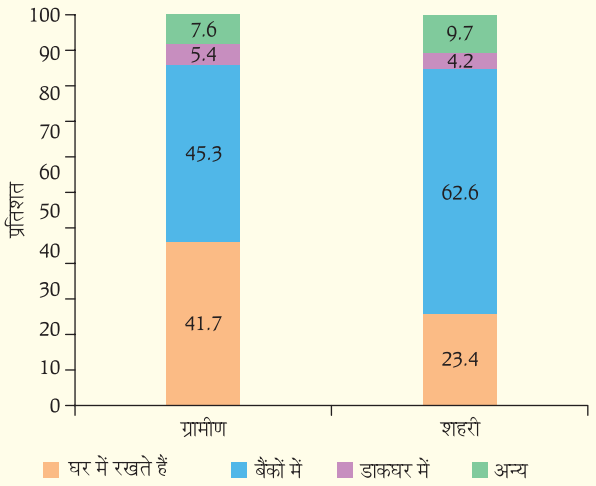

स्रोत: एनएसएचआई 2004-05 आँकड़े : एनसीएइआर-सीएमसीआर विश्लेषण

चार्ट 10: बचत करने के लिए परिवारों का अभिप्रेरण

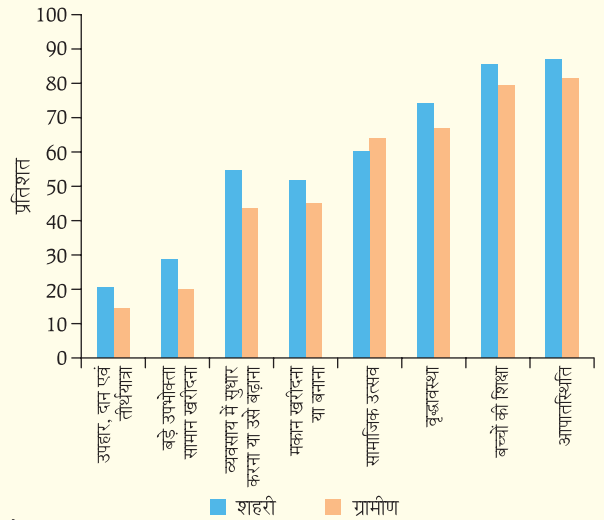

स्रोत: एनएसएचआई 2004-05 आँकड़े : एनसीएइआर-सीएमसीआर विश्लेषण

अधिकांश बुनियादी सेवाओं के संदर्भ में अंतराल काफी बड़ा है । अन्य सेवाओं की व्याप्ति बहुत कम है । निस्संदेह, उच्च व्याप्ति माँग की स्थिति पर निर्भर करती है और प्रत्येक व्यक्ति को प्रत्येक प्रकार के उत्पाद या सेवा की चाहत या आवश्यकता महसूस नहीं भी हो सकती है, लेकिन जैसा कि बादवाले चार्ट में बताया गया है, कुछ ऐसी सेवाएँ हैं जिनकी माँग को पूरा नहीं किया गया है और उनकी संख्या बहुत बड़ी है।

चार्ट 9 में यह तथ्य प्रकाशित किया गया है कि पारिवारिक वित्तीय आस्तियों का एक बहुत बड़ा अनुपात नकदी के रूप में धारित है जो यह बताता है कि अनेक परिवारों की बहुत कम पहुँच लित्तीय प्रणाली तक है। स्वाभाविक रूप से शहरी क्षेत्रों की तुलना में ग्रामीण क्षेत्रों में यह अनुपात और भी ऊँचा है । स्पष्ट रूप से बैंक-जमा को नकदी रखने के विकल्प के रूप में देखा जाता है जो एक सकारात्मक गतिविधि है लेकिन इस चित्र में सुधार की गुंजाइश स्पष्ट दिखाई देती है ।

रिज़र्व बैंक इस बात पर जोर देता रहा है कि बैंकिंग प्रणाली की पहुँच का विस्तार किया जाये । व्यापक उद्देश्य यह सुनिश्चित करना है कि 2000 से अधिक आबादी (2001 की जनगणना के अनुसार) वाले गाँवों में सभी परिवारों को वर्ष 2012 तक बैंकिंग प्रणाली तक पहुँच प्रदान की जाये । प्रौद्योगिकी सुविधाओं का व्यापक उपयोग बैंकों को आइटी समर्थित बिजनेस करेसपौंडेंट (बीसी) मॉडल के रूप में सत्याभासी शाखाओं के परिचालन की अनुमति देते हुए इसे सुविधाजनक बनाता है। इस मॉडल से कुछ आशा बँधती है क्योंकि यह देश भर में फैला हुआ है, लेकिन इसकी कुछ सीमाएँ भी हैं । यह तर्कसंगत रूप से स्पष्ट है कि बीसी मॉडल अत्यधिक विस्तारयोग्य नहीं है । बैंकों को अपने स्वयं की संगठनात्मक संरचना के अनुसार नवोन्मेष करना होगा जिससे मॉडल की व्यवहार्यता और दीर्घकालिकता बढ़ायी जा सके । लेकिन इन सारी चिंताओ के साथ भी यह एक अच्छी शुरुआत है और एक सामान्य मॉडल, जिसे स्थानीय स्थितियों के अनुसार अनुकूल बनाया गया हो, सर्वाधिक संभावित तरीका है जिसके द्वारा वित्तीय प्रणाली तक बुनियादी या सीमित सुविधा वाले बैंक खाते के माध्यम से कम से कम अल्प पहुँच हो सकती है । इसे इस प्रक्रिया की शुरुआत के रूप में देखा जाता है; एक बार ग्राहक इस प्रणाली में सम्मिलित हो जाये तो यह उसकी अन्य आवश्यकताओं पर ध्यान देने के लिए अपने मौजूदा उत्पादों को अनुकूलित या नये उत्पादों की डिजाइन बना सकती है ।

वित्तीय सेवा ग्राहकों के इस नये समूह की दिलचस्पी अन्य किन उत्पादों में हो सकती है ? इसे मापने का एक तरीका उन कारणों का पता करना होगा, जिनके लिए लोग वित्तीय सेवाओं का उपयोग करते हैं । चार्ट 10, जिसमें परिवारों के हाल में किये गये सर्वेक्षणों के परिणाम दिये गये हैं, इस पर कुछ महत्वपूर्ण अंतर्दृष्टि प्रदान करता है । उत्सव या सामाजिक दायित्व, वृद्धावस्था की सुरक्षा, बच्चों की शिक्षा और आपातकालीन आवश्यकताओं को पूरा करना - ये चार सर्वाधिक महत्वपूर्ण अभिप्रेरण होते हैं वित्तीय सेवाओं तक पहुँचने के लिए । स्पष्ट रूप से वित्तीय समावेशन केउद्देश्य को बढ़ाने में बीमा, पेंशन और अन्य दीर्घकालिक बचत साधनों की भूमिका होती है । इन खंडों में ही व्याप्ति बहुत कम है । चार्ट 11 में बीमा सेवाओं की क्षेत्रपार तुलना प्रस्तुत की गयी है । इसके लिए दुबारा स्पष्टीकरण की आवश्यकता नहीं है ।

यहाँ यह आवश्यक है कि अंतिम छोर तक सुपुर्दगी तंत्र का विकास किया जाये जो औपचारिक क्षेत्र के बड़े प्रदाताओं से इन उत्पादों को नये ग्राहकों के विशाल समूह तक ले जाये । हालाँकि ये परिमाण में बहुत अधिक हो सकते हैं, फिर भी अलग-अलग लेन देन छोटे होंगे और भौगोलिक रूप से बिखरे होंगे जो लागत की दृष्टि से बहुत अव्यवस्था

चार्ट 11: भारत में बीमा की पैठ

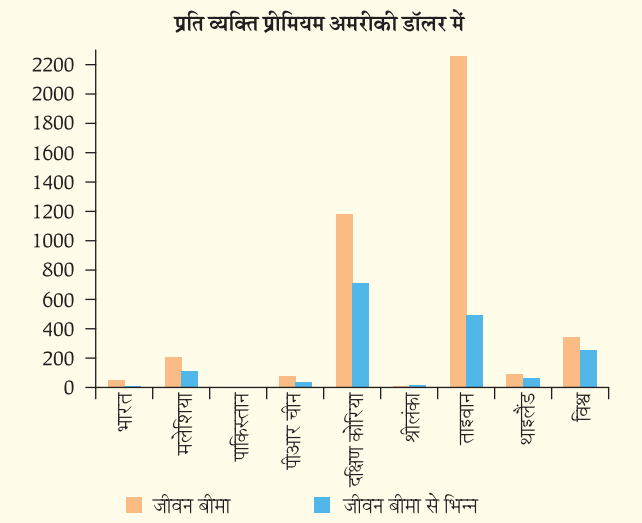

स्रोत: स्विस आरई, सिग्मा

उत्पन्न कर सकते हैं । संगठनात्मक संरचना, चाहे वह विद्यमान प्रदाताओं के अंदर या स्वतंत्र हो, का विकास किया जाना होगा, ताकि इन विशिष्ट बाजार-स्थितियों को समाहित किया जा सके । विनियामक परिप्रेक्ष में, सेवाओं का बहुत अधिक विस्तार किया जाना जोखिमों को आमंत्रित करता है और इनकी पहचान की जानी होगी और उनके लिए व्यवस्था करनी होगी ।

अब मैं कारपोरेट बांड बाजार के मुद्दे की ओर जाना चाहूँगा । इसकी पृष्ठभूमि में जाने के लिए चार्ट 12 में 12वीं योजना-अवधि, 2012-17, में आधारभूत संरचना क्षेत्र के लिए अनुमानित वित्तीय अपेक्षाओं को दर्शाया गया है । अगले पाँच वर्षों में, 40 लाख करोड़ रुपये या एक ट्रिलियन अमरीकी डॉलर का निवेश किया जाना वांछित

चार्ट 12: भारत में प्रक्षेपित आधारभूत संरचाना निवेश

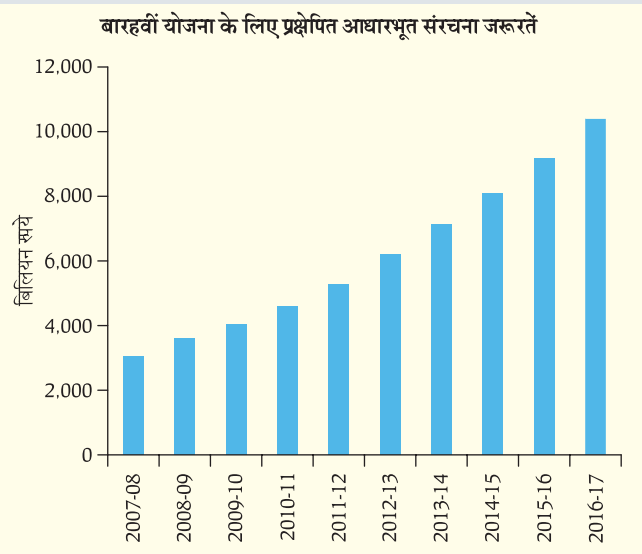

है। जैसाकि मैंने पहले बताया है, आधारभूत संरचना की आपूर्ति एक गंभीर अड़चन होती है और बड़ी, कुशलतापूर्वक कार्यान्वित की गयी और सुव्यवस्थित परियोजनाएँ सभी क्षेत्रों में आवश्यक होती हैं । इनके आगे बढ़ते रहने पर भी उनके लिए समसाधनों को जुटाने के वास्ते वित्तीय सरणियों का स्पष्ट अभाव होता है। अब तक नये निवेशों का वित्तपोषण करने की जिम्मेवारी प्रधानतः बैंकों की रही है । आस्ति-देयता प्रबंधन और क्षेत्रीय एक्सपोजर सीमाओं के कारण इस क्षेत्र का वित्तपोषण करते रहने की बैंकों की क्षमता सीमित हो जाती है । अतः वैकल्पिक सारणियों की द्रुत गति से व्यवस्था की जानी होगी । संभवतः कारपोरेट बांड बाजार इन सबों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण है ।

अनेक वर्षों से एक के बाद एक समिति इस बाजार के विकास के लिए कार्रवाई करने की सिफारिश करती रही है । ये सभी विनियामक क्षेत्रों के लिए हैं और यही एक कारण है कि अनेक कदम उठाये जाने के बावजूद क्यों एक महत्वपूर्ण आरंभिक कदम नहीं उठाया गया जिससे बाजार लाभप्रद बन सकता था । तथापि, हाल के महीनों में इसे उच्च प्राथमिकता प्रदान की गयी है जिसमें विनियामक और सरकार, दोनों की ओर से शेष बाध्यकर मजबूरी पर ध्यान दिया जा रहा है । वर्ष 2011-12 के केंद्र सरकार के बजट में एक महत्वपूर्ण कदम उठाते हुए आधारभूत संरचना विकास निधियों द्वारा जारी किये गये बांडों के संबंध में कर की राशि रोकने से छूट दी गयी । यह उचित होगा कि यह सुविधा उन बांडों पर भी विस्तारित की जाये, जो सीधे इन्फ्रास्ट्रक्चर कंपनियों द्वारा जारी किये जाते हैं । अन्य मुद्दा, जिसे रेखांकित किया गया है, वह है स्टाम्प शुल्क में अंतर-राज्यीय अंतर का होना, जिस पर ध्यान देने के लिए सभी राज्यों में दरों को सामंजस्यपूर्ण बनाने का प्रयास किया जा रहा है । बड़ी संख्या में बांडों को संभावित बड़े घरेलू निवेशक आधार के लिए बीमा और पेंशन निधियों के रूप में आकर्षक बनाये जाने हेतु ऋण बढ़ोतरी तंत्र जो बांड की कीमत के लिए न्यूनतम श्रेणी-निर्धारण अपेक्षाओं को पूरा करने की अनुमति देगा, की संभावना की खोज की जा रही है । जितनी दक्षता और विश्वसनीयता से यह सेवा प्रदान की जायेगी उतना ही अधिक निवेश इन बड़ी संस्थाओं के लिए जुटाना संभव होगा ।

निस्संदेह, हमारी अभिलाषा जो भी हो प्रश्न यह है कि क्या बांड बाजार निश्चित रूप से आधारभूत संरचना क्षेत्र के लिए बल्कि अन्य क्षेत्रों में निवेश के लिए भी यथार्थवादी रूप से वित्तपाषण की वैकल्पिक सरणी के रूप में उभर कर सामने आयेगा । चार्ट 13 में इस संबंध में क्षेत्रपार तुलना प्रस्तुत की गयी है । ऐसा प्रतीत होता है कि उभरती अर्थव्यवस्थाओं के संदर्भ में भी भारतीय बांड बाजारों के लिए कुछ स्थान उपलब्ध होगा ।

VI. समापन टिप्पणी

मैंने कारकों के चार सेटों पर ध्यान दिया है जिनके बारे में मेरा मानना है कि ये दीर्घकालिक वृद्धि की चाबी हैं और मैंने अपने विचारों

चार्ट 13: बांड बाजार का आकार : मार्च 2011

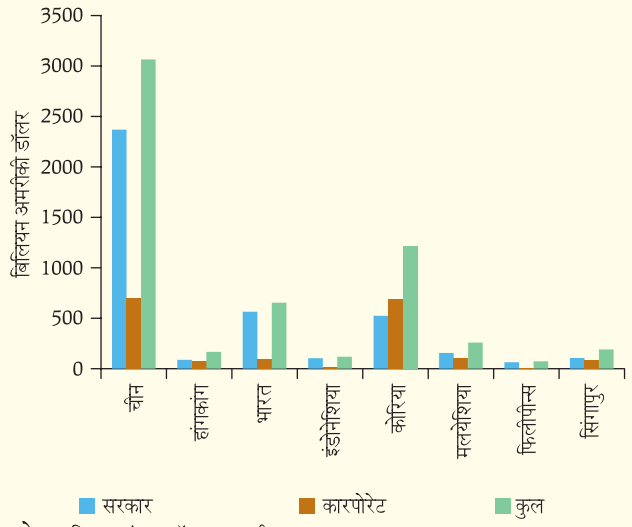

स्रोत: एशियन बांड्स ऑनलाइन : बीआइएस

को स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि इस संबंध में नीतिगत अत्यावश्यकताएँ क्या हैं । जैसाकि मैंने इंगित किया है, अनेक क्षेत्रों में सुधार के उपाय किये गये हैं या किये जा रहे हैं । तथापि, ऐसे अनेक क्षेत्र हैं जिनमें या तो विश्वसनीय समर्थक साक्ष्य या नये दृष्टिकोणों के आधार पर कार्रवाई करना आवश्यक है और समाधान ढूँढ़ना है । मैं अपनी इस सूचना पर भी पुनः जोर देना चाहता हूँ कि दीर्घकालिक वृद्धि के लिए की जाने वाली कार्रवाई के लिए यह अभिप्रेत संपूर्ण सूची नहीं थी ।

प्रत्येक सेट के कारकों के लिए मैं कार्रवाई और समाधान के संबंध में अपने विचारों का सारांश प्रस्तुत करने का प्रयास नहीं करूँगा, लेकिन मैं उन तीन प्रमुख सिद्धांतों पुरजोर देते हुए अपनी बात समाप्त करूँगा जिन्होंने व्यक्त या अव्यक्त रूप में मेरी प्रस्तुति के माध्यम से एक सामान्य सूत्र प्रदान किया है ।

पहला, वृद्धि के लिए नीतियों और युक्तियों को कल्याणोन्मुख होना है । प्रमुख पणधारियों - यहाँ व्यक्तियों या परिवारों - की स्थिति या जीवन-स्तर की गुणवत्ता को अनुकूल सोच के केंद्र में रखना दीर्घकालिकता की चाबी होती है ।

दूसरा, किसी भी नीति या युक्ति को जोखिमों पर उचित ध्यान देना होगा । उच्च जोखिम-उच्च प्रतिलाभ व्यक्तियों द्वारा संविभाग प्रबंध के लिए मान्य दृष्टिकोण हो सकता है लेकिन नीति-निर्धारण में ऐसा नहीं होता जहाँ कुछ पणधारियों को हुए बड़े फायदे के संदर्भ में कुछ को हुई बड़ी हानियों को उचित ठहराया जाना कठिन होता है । निश्चित रूप से नीति-निर्माताओं के लिए 'वृहत्तम संख्या के लिए वृहत्तम लाभ' एक मान्य आधार वाक्य है लेकिन इसके पूरक के रूप में 'वृहत्तम संख्या के लिए न्यूनतम जोखिम' का प्रयोग किया जा सकता है । जिन स्थितियों में बढ़ी हुई जोखिमें कुछ पणधारियों के लिए अपरिहार्य होती हैं, उनमें विश्वसनीय सुरक्षा कवच इस युक्ति का आवश्यक अंग बनाया जाना चाहिए ।

तीसरा, एक व्यावहारिक दृष्टिकोण 'जो भी काम करता है' महत्वपूर्ण है । ऐसे बहुविध वातावरण, बहुविध आर्थिक, सामाजिक और राजनीतिक संदर्भ होते हैं जिनमें नीतियाँ बनायी और कार्यान्वित की जाती हैं, किसी एक देश में भी । इन सबमें एक ही समाधान की उम्मीद नहीं की जा सकती है । निचले स्तर से ऊपर की ओर गतिशील सोच आवश्यक है जो युक्तियुक्त समाधान की डिजाइन बनाने के लिए स्थानीय ज्ञान और जानकारी के आधार पर बनती है। इसके साथ ही, ऊपरी स्तर से नियंत्रित तत्व जो सामान्य लक्ष्य और नीतिगत सिद्धांतों को स्पष्ट करता है, संसाधान जुटाने और आवंटन करने की दक्षता बढ़ाता है और हर क्षेत्र में सीखने को सुविधाजनक बनाता है, भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है । इन दोनों का एक इष्टतम जोड़ ढूँढ़ने की आवश्यकता है ।